

समयसार, ११० कलश का भावार्थ है। जब तक.. यथाख्यातचारित्र नहीं होता। भावार्थ में है। आत्मा में पूर्ण चारित्र होने पर जैसा अन्तर चारित्र का स्वरूप है, वैसा पर्याय में यथार्थचारित्र प्रगट (न) हो तब तक सम्यक्दृष्टि के.. यथाख्यात पूर्ण चारित्र-स्वरूप की रमणता पूरी न हो, तब तक सम्यक्दृष्टि के दो धाराएँ रहती हैं... दो धारा अर्थात् एक ज्ञानधारा और एक शुभाशुभ विकार धारा। शुभाशुभ कर्मधारा (और ज्ञानधारा) दोनों लिये। शुभ और अशुभ परिणाम वे भी होते हैं और ज्ञानधारा (अर्थात्) शुद्धस्वरूप की जैसी अनुभव दशा होकर जो शुद्धपरिणति हुई है, उसे यहाँ ज्ञानधारा कहते हैं अर्थात् शुद्धपरिणति हुई, उसे यहाँ ज्ञानधारा कहते हैं।

उन दोनों के एक साथ रहने में कोई भी विरोध नहीं है। शुद्धपरिणति भी हो और पुण्य-पाप के भाव भी हों। दो के रहने में विरोध नहीं है। विरोध नहीं अर्थात्? होते हैं। आत्मा का सम्यग्दर्शन-शुद्ध चैतन्यस्वरूप पूर्ण ध्रुव को ध्येय में लेकर जो सम्यग्दर्शन में अनुभव हो, वह शुद्ध धारा तो सदा रहती है और उसके साथ शुभाशुभ परिणाम के भाव भी साथ में होते हैं। ये साथ रहने में कोई भी विरोध नहीं है।

(जैसे मिथ्याज्ञान और सम्यक्ज्ञान के परस्पर विरोध है..) मिथ्याज्ञान हो और उस समय सम्यग्ज्ञान भी हो, ऐसा नहीं होता। मिथ्यादृष्टि भी हो और सम्यग्दृष्टिपना भी हो, ऐसा नहीं हो सकता। दोनों (में) अत्यन्त विरोध है।

**मुमुक्षु** : तीसरे गुणस्थान में होता है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** तीसरे में क्या है ? तीसरे में अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं, मिश्र है, परन्तु वह तो अन्तर्मुहूर्त की मिश्र की स्थिति है ।

यहाँ तो चारित्रमोह का उदय और निर्मल धारा दोनों की बात करनी है । सम्यग्दर्शन और ज्ञान और जितने अंश में शुद्धता हुई, वह धारा तो सदा रहती है और उसमें जितनी कमी है, उतना शुभाशुभभाव भी होता है । उन दोनों के साथ रहने में विरोध नहीं है ।

मिश्र में तो जरा अन्तर्मुहूर्त की स्थिति है । कुदेव को भी माने और सुदेव को भी माने, ऐसी एक सूक्ष्म साधारण बात है ।

यहाँ तो रागधारा और आत्मा की शुद्धिधारा की बात है । चारित्रमोह का उदय हो, राग-द्वेष हो, विषय-कषाय भी हो और एक ओर आत्मा के सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और निर्मलता भी हो । यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक दो धाराएँ होती हैं ।

(वैसे कर्मसामान्य और ज्ञान के विरोध नहीं है।) मिथ्याज्ञान और सम्यग्ज्ञान एक समय में दोनों साथ में नहीं हो सकते । इसी प्रकार कर्मसामान्य... सामान्य अर्थात् शुभ-अशुभ । शुभ हो या अशुभभाव हो और आत्मा की शुद्धता । सम्यग्दर्शन की शुद्धता, ज्ञान का आंशिक वेदन और स्वरूप का आचरण इत्यादि । ऐसी धारा ( साथ रहने में ) विरोध नहीं है । कर्म सामान्य अर्थात् शुभाशुभभाव और इस ओर में स्वभाव के आश्रय से हुई शुद्धता, दोनों के एक साथ रहने में विरोध नहीं है ।

ऐसी स्थिति में कर्म अपना कार्य करता है,.. आहाहा ! शुभाशुभभाव होता है, वह अपना बन्ध का कार्य करता है । किसी समय ऐसा आवे कि सम्यग्दृष्टि को बन्ध नहीं है, वहाँ एकान्त खींच ले, ऐसा नहीं है । वह तो दृष्टि के जोर की अपेक्षा से बन्ध नहीं है और भोग निर्जरा का हेतु है, ऐसा भी कहा परन्तु वह भोग का भाव कहीं निर्जरा का हेतु नहीं है । वह भाव होता है, वह भाव अपना बन्ध का कार्य करता है । आहाहा !

**मुमुक्षु :** सम्यग्दृष्टि का भोग तो निर्जरा का हेतु कहलाता है ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो दृष्टि के जोर की अपेक्षा से बात है । ( बाकी ) भोग है, वह राग है । राग है, वह बन्ध का कारण है । यह तो दृष्टि के जोर की अपेक्षा से शुद्ध चैतन्यध्रुव पर जोर है, ( इसलिए कहा ) । परमस्वभावभाव पारिणामिक त्रिकाल ज्ञायकभाव के आश्रय

में पड़ा है, उस जोर से उसे रागादि आते हैं, वे खिर जाएँगे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जैसे भगवान को हिलने-चलने का उदय आता है, वह भी खिर जाता है। क्षायिकभाव है न!

यहाँ तो पुण्य-पाप के भाव में से चाहे जो कर्म सामान्य हो, रौद्रध्यान भी हो। पाँचवें गुणस्थान में, लो! छठवें में आर्तध्यान हो, चौथे-पाँचवें में रौद्रध्यान हो, ऐसे दो भाग होते हैं। इसीलिए उसमें **कर्म अपना कार्य करता है**,.. शुभ-अशुभभाव आवें, वे बन्ध का कार्य करते हैं और **ज्ञान अपना कार्य करता है**। ज्ञान अर्थात् शुद्धपरिणति, हों! पर्याय में जितना सम्यग्दर्शन, ज्ञान शुद्ध हुआ है, उतना ज्ञान अपना कार्य करता है। अर्थात् कि वह तो निर्जरा का कार्य करता है। आहाहा! एक समय में दोनों हो सकते हैं। अन्धकार और प्रकाश में विरोध है, उनमें अविरोध नहीं है। प्रकाश हो, वहाँ अन्धकार नहीं होता और अन्धकार हो, वहाँ प्रकाश नहीं होता। ऐसे यह विरोध नहीं है। चैतन्य की द्रव्यदृष्टि ध्रुव (को) ध्येय करके जहाँ शुद्ध चैतन्य पर्याय में प्रगटा है, (वहाँ) अनन्त गुण की शुद्धि का अंश प्रगट हुआ है। आहाहा! उस अनन्त गुण की शुद्धि का अंश जो प्रगट हुआ है, वह अपना कार्य करता है। जानने-देखने का या निर्जरा का (कार्य करता है) और पुण्य-पापभाव बन्ध का कार्य करते हैं।

**जितने अंश में शुभाशुभ कर्मधारा है..** आहाहा! पुण्य और पाप के जितने अंश में भाव हैं, उतने अंश में **कर्मबन्ध होता है..** लो! एक ओर ऐसा कहा कि समकिति को बन्ध नहीं है। उसमें से लोग पकड़ते हैं, देखो! समकिति को (बन्ध नहीं है)। दीपचन्द्रजी ने यह पकड़ा था न! कि समकिति को दुःख नहीं होता। यहाँ कहते हैं, शुभाशुभभाव है (तो) दुःख होता है। जहाँ तक यथाख्यातचारित्र न हो, वहाँ तक थोड़ा आनन्द का भी अनुभव होता है और शुभाशुभभाव का-दुःख का भी वेदन होता है। आहाहा! अपने पक्ष में पकड़ जाए न, तब कठिन पड़े उसे छूटना कठिन पड़ता है।

यहाँ तो यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक मुनि छठवें गुणस्थान में हों, उन्हें जितनी शुद्धि प्रगट हुई है, वह तो निर्जरा का काम करती है परन्तु उसके साथ पंच महाव्रत आदि के परिणाम हैं, वह बन्ध का काम करते हैं। आहाहा! दोनों के इस प्रकार से रहने में विरोध नहीं है।

जितने अंश में शुभाशुभ कर्मधारा है, उतने अंश में कर्मबन्ध होता है.. पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में भी लिया है न! पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में तीन गाथाएँ (२१२ से २१४) आती है न! जितने अंश में राग उतने अंश में बन्ध और जितने अंश में धर्म—सम्यग्दर्शन, उतने अंश में निर्जरा। तीन गाथाएँ हैं - दर्शन, ज्ञान और चारित्र। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय! किस अपेक्षा से कथन है, ऐसा न समझे (फिर) एकान्त खींचे कि सम्यग्दर्शन हुआ इसलिए फिर उसे उदय आकर खिर जाता है, उदय आकर खिर जाता है परन्तु उदय में जुड़ता है या नहीं? जुड़ता न हो, तब तो वीतराग हो जाए। आहाहा! उतना अपनी दशा में पराधीन (होकर) कर्ता-भोक्ता के परिणाम होते हैं। ज्ञाननय में ऐसा कहा कि ज्ञानी को भी कर्ता और भोक्ता के परिणाम होते हैं। परन्तु वे कर्ता-भोक्ता के जितने अशुद्ध परिणाम हैं, वह बन्ध का कारण है और जितनी द्रव्य के आश्रय से शुद्धता हुई है, वह पवित्रता का कारण है। आहाहा! जितने अंश में ज्ञानधारा है, उतने अंश में कर्म का नाश होता जाता है। देखा? उतने अंश में कर्म निर्जरित होते हैं।

विषय-कषाय के विकल्प.. होते हैं। आहाहा! सम्यग्दृष्टि छह खण्ड के राज्य में पड़ा हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों, उनकी ओर का राग भी हो और आत्मा की ओर की सम्यग्दर्शन की शुद्धता भी हो। दोनों साथ में होते हैं। विषय-कषाय के विकल्प.. हों या व्रत, नियम के विकल्प.. पहले अशुभ लिए और यह शुभ (लिए)। शुद्ध स्वरूप का विचार तक भी.. शुद्धस्वरूप का विचार शब्द से (आशय) विकल्प है, वह तक भी कर्मबन्ध का कारण है,.. आहाहा! शुद्ध हूँ, पवित्र हूँ—ऐसा जो विकल्प उठता है, उसे यहाँ विचार कहकर, वह बन्ध का कारण (है, ऐसा कहा है)। आहाहा!

जितने अंश में वीतरागस्वरूप प्रभु है, उसके आश्रय से जितने अंश में वीतरागता प्रगट हुई है, उतने अंश में कर्म की निर्जरा है। आहाहा! जितनी स्व के आश्रय से परिणति प्रगट हुई है, वह निर्जरा का कारण है और परलक्ष्य से जितने शुभाशुभ हुए, उतना बन्ध का कारण है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** विषय-कषाय और व्रत में परस्पर अन्तर है ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** शुभाशुभ है न! भले नाम नहीं। यह आया न! कर्मधारा आयी न! 'यावत् ज्ञानस्य कर्मविरतिः' पूर्ण हुई नहीं, ऐसा उसमें आया न! कर्म में आ गया या

नहीं ? कर्मविरति पूर्ण हुई नहीं, वहाँ शुभाशुभभाव है। आया या नहीं ? 'अवशतः यत् कर्म समुल्लसति' यह अन्दर आया। उसे पराधीनरूप से कर्म अर्थात् शुभाशुभभाव उत्पन्न होते हैं। (मूल) कलश में है। 'अवशतः यत् कर्म समुल्लसति' देखा ? (जबरदस्ती से) जो कर्म प्रगट होता है अर्थात् उदय होता है.. यह शुभाशुभ है, वह बँधता है। आहाहा! सामान्य बन्ध का कारण कहा, उसमें शुभाशुभभाव आ गये। अमृतचन्द्राचार्यदेव के कलश के पाठ में आ गये। कर्म सामान्य तथा एक ओर ज्ञानधारा। कर्म सामान्य में शुभाशुभ आये। आहाहा!

शुद्ध स्वरूप का विचार तक भी-कर्मबन्ध का कारण है, शुद्ध परिणतिरूप ज्ञानधारा ही मोक्ष का कारण है। एक आत्मा पवित्र शुद्ध चैतन्य ध्रुव ज्ञायकभाव के आश्रय से जो परिणति हुई, उतनी ही ज्ञानधारा है, वह मोक्ष का कारण है, क्योंकि आत्मा स्वयं मोक्षस्वरूप है, अबन्धस्वरूप है, मुक्तस्वरूप है। उसके अवलम्बन से जितनी परिणति हुई, वह सब मोक्ष का कारण है। आहाहा! और उस क्षण जितने विषय-कषाय के परिणाम, शुभाशुभभाव हों या दया, दान, व्रत के (भाव) हों, वह बन्ध का कारण है। एक क्षण में दोनों के रहने में विरोध नहीं है। विरोध नहीं का अर्थ ऐसा नहीं कि शुद्ध परिणति से राग है, वह विरोध नहीं। वह शुद्ध परिणति से तो विरोध है परन्तु यहाँ साथ रहने में विरोध नहीं है, ऐसा। वरना शुद्ध परिणति से तो शुभाशुभभाव विरोध है। विरोध है, विरुद्ध भाव आया था न? विरुद्ध भाव, परन्तु वह तो पवित्रता की दशा की अपेक्षा से विरोध है, ऐसा कहा परन्तु साथ में नहीं रह सकता, ऐसा विरोध नहीं है। सम्यग्दर्शन के साथ जैसे मिथ्यादर्शन नहीं रह सकता, वैसे यहाँ शुद्ध परिणति के साथ शुभाशुभभाव नहीं रह सकते, ऐसा नहीं है। आहाहा!

किसी जगह ऐसा कहा हो कि भाई! सम्यग्दृष्टि को तो जो कुछ उदय है, वह खिर जाता है। निर्जरा की गाथा में आता है। इन्द्रिय का भोग है, वह सब निर्जरित हो जाता है। देखो! (निर्जरा अधिकार की) पहली गाथा। किस अपेक्षा से कहते हैं? इस शुद्धता के जोर से। नहीं तो वहाँ गाथा में तो सचेत-अचेत का भोग भी लिया है। सचेत-अचेत का भोग भी निर्जरा का हेतु है, ऐसा कहा। 'उवभोगमिंदियेहिं' आहाहा! वह तो स्वभाव की दृष्टि की ओर ढल गया भाव, अल्प जो पर के आश्रय रहा, उसे गौण करके बन्ध का कारण नहीं है, ऐसा कहा है। आहाहा! ऐसा करके कोई स्वच्छन्दी हो जाए कि सम्यग्दृष्टि हुआ,

अब फिर चाहे जितने विषय-कषाय सेवन करूँ तो मुझे बन्ध नहीं है, ऐसा नहीं चलता। आहाहा!

जितने अंश में विषय-कषाय के परिणाम, शुभाशुभभाव जितने अंश में हों, उतने अंश में बन्धन है, उतने अंश में दुःख है, उतने अंश में आस्रव है। आहाहा! एक साथ रहने में विरोध नहीं है, इतना यहाँ सिद्ध करना है।

### कलश-१११

अब कर्म और ज्ञान का नयविभाग बतलाते हैं:-

( शार्दूलविक्रीडित )

मग्नाः कर्म-नयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यत्,  
मग्ना ज्ञान-नयैषिणोऽपि यदति-स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः ।  
विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं,  
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥१११॥

श्लोकार्थः : [कर्मनयावलम्बनपराः मग्नाः] कर्मनय के आलम्बन में तत्पर (कर्मनय के पक्षपाती) पुरुष डूबे हुए हैं [यत्] क्योंकि [ज्ञानं न जानन्ति] वे ज्ञान को नहीं जानते। [ज्ञाननय-एषिणः अपि मग्नाः] ज्ञाननय के इच्छुक (पक्षपाती) पुरुष भी डूबे हुए हैं [यत्] क्योंकि [अति स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः] वे स्वच्छन्दता से अत्यन्त मन्द उद्यमी हैं (-वे स्वरूप प्राप्ति का पुरुषार्थ नहीं करते, प्रमादी हैं और विषयकषाय में वर्तते हैं)। [ते विश्वस्य उपरि तरन्ति] वे जीव विश्व के ऊपर तैरते हैं, [ये स्वयं सततं ज्ञानं भवन्तः कर्म न कुर्वन्ति] जो कि स्वयं निरन्तर ज्ञानरूप होते हुए-परिणामते हुए कर्म नहीं करते [च] और [जातु प्रमादस्य वशं न यान्ति] कभी भी प्रमादवश भी नहीं होते (-स्वरूप में उद्यमी रहते हैं)।

भावार्थ : यहाँ सर्वथा एकान्त अभिप्राय का निषेध किया है क्योंकि सर्वथा एकान्त अभिप्राय ही मिथ्यात्व है।

कितने ही लोग परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा को तो जानते नहीं और व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्ररूप क्रियाकाण्ड के आडम्बर को मोक्ष का कारण जानकर उसमें तत्पर रहते हैं—उसका पक्षपात करते हैं। ऐसे कर्मनय के पक्षपाती लोग—जो कि ज्ञान को तो नहीं जानते और कर्मनय में ही खेदखिन्न हैं वे—संसार में डूबते हैं।

और कितने ही लोग आत्मस्वरूप को यथार्थ नहीं जानते तथा सर्वथा एकान्तवादी मिथ्यादृष्टियों के उपदेश से अथवा अपने आप ही अन्तरंग में ज्ञान का स्वरूप मिथ्या प्रकार से कल्पित करके उसमें पक्षपात करते हैं। वे अपनी परिणति में किञ्चित्मात्र भी परिवर्तन हुए बिना अपने को सर्वथा अबन्ध मानते हैं और व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्र के क्रियाकाण्ड को निरर्थक जानकर छोड़ देते हैं। ऐसे ज्ञाननय के पक्षपाती लोग जो कि स्वरूप का कोई पुरुषार्थ नहीं करते और शुभ परिणामों को छोड़कर स्वच्छन्दी होकर विषय-कषाय में वर्तते हैं, वे भी संसारसमुद्र में डूबते हैं।

मोक्षमार्गी जीव ज्ञानरूप परिणमित होते हुए शुभाशुभ कर्मों को (अर्थात् शुभाशुभभावों को) हेय जानते हैं और शुद्ध परिणति को ही उपादेय जानते हैं। वे मात्र अशुभ कर्मों को ही नहीं किन्तु शुभ कर्मों को भी छोड़कर, स्वरूप में स्थिर होने के लिए निरन्तर उद्यमी रहते हैं—वे सम्पूर्ण स्वरूपस्थित होने तक पुरुषार्थ करते ही रहते हैं। जबतक, पुरुषार्थ की अपूर्णता के कारण शुभाशुभ परिणामों से छूटकर स्वरूप में सम्पूर्णतया स्थिर नहीं हुआ जा सकता तबतक—यद्यपि स्वरूपस्थिरता का आन्तरिक-आलम्बन (अन्तःसाधन) तो शुद्ध परिणति स्वयं ही है, तथापि—आन्तरिक-आलम्बन लेनेवाले को जो बाह्य आलम्बन होते हैं, ऐसे (शुद्ध स्वरूप के विचार आदि) शुभ परिणामों में वे जीव हेयबुद्धि से प्रवर्तते हैं, किन्तु शुभ कर्मों को निरर्थक मानकर उन्हें छोड़कर स्वच्छन्दतया अशुभ कर्मों में प्रवृत्त होने की बुद्धि कभी नहीं होती। ऐसे एकान्त अभिप्राय रहित जीव कर्मों का नाश करके, संसार से निवृत्त होते हैं॥१११॥

---

श्लोक - १११ पर प्रवचन

---

अब कर्म और ज्ञान का नयविभाग बतलाते हैं:- अब १११ श्लोक आया।

मग्नाः कर्म-नयावलम्बनपरा ज्ञानं न जानन्ति यत्,

मग्ना ज्ञान-नयैषिणोऽपि यदति-स्वच्छन्दमन्दोद्यमाः।



विश्वस्योपरि ते तरन्ति सततं ज्ञानं भवन्तः स्वयं,  
ये कुर्वन्ति न कर्म जातु न वशं यान्ति प्रमादस्य च ॥१११॥

आहाहा! पुण्य-पाप व्याख्यान का यह कलश है। ‘कर्मनयावलम्बनपराः मग्नाः’ कर्मनय के आलम्बन में तत्पर.. अर्थात् कि व्रत, तप, भक्ति और पूजा का जिसे पक्ष है कि इनसे मेरा कल्याण होगा, वे (कर्मनय के पक्षपाती) पुरुष डूबे हुए हैं.. आहाहा! व्रत, तप, भक्ति और पूजा तथा शुद्ध.. शुद्ध.. शुद्ध.. हूँ—ऐसा जो विकल्प, वह भी बन्ध का कारण है, ऐसा न मानकर वह निर्जरा, धर्म है – ऐसा मानते हैं, वे डूब गये हैं। आहाहा! वे संसार में मिथ्यात्व में डूब गये हैं। आहाहा! मिथ्यात्व, वह संसार है।

आत्मा की पर्याय के अतिरिक्त संसार कहीं दूर नहीं रहता; इसलिए जो शुभाशुभभाव हो और ऐसा माने कि यह बन्ध का कारण नहीं, मुझे लाभ का कारण है – ऐसी जो मिथ्यादृष्टि; वह मिथ्यादृष्टि, वह संसार है। आहाहा! वे मिथ्यात्व में डूब गये हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से कल्याण होगा, ऐसा माननेवाले मिथ्यात्व में डूब गये हैं। आहाहा! है? कर्मनय के आलम्बन में तत्पर पुरुष डूबे हुए हैं.. आहाहा!

क्योंकि वे ज्ञान को नहीं जानते। स्वरूप भगवान (आत्मा) पूर्णानन्द प्रभु, वह शुद्ध है, उसकी परिणति प्रगट नहीं करते और नहीं जानते। आहाहा! राग की क्रिया है, उसमें जो सर्वस्व मानकर बैठे हैं, वे मिथ्यात्व में डूब गये, संसार में डूबकर पड़े हैं। आहाहा! क्यों? कि ‘ज्ञानं न जानन्ति’ चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्य वीतरागमूर्ति को तो वे पर्याय में जानते नहीं, पर्याय में उसे अनुभव नहीं करते, पर्याय में उसे श्रद्धा-ज्ञान में नहीं लेते। आहाहा! इस कारण से ज्ञान को अर्थात् आत्मा की शुद्ध परिणति उन्हें नहीं है, इसलिए वे मिथ्यात्व में डूब गये हैं। आहाहा!

‘ज्ञाननय-एषिणः अपि मग्नाः’ ज्ञाननय के इच्छुक.. इच्छुक कहा है। ज्ञाननय प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं। अनुभव प्रगट हुआ है, ऐसा नहीं। आत्मा शुद्ध चैतन्य है, वह अनुभव में आया है, ऐसा नहीं, मात्र ज्ञान के क्षयोपशम की धारा को चाह करते हैं। उघाड़ हुआ, इसलिए मानो हमें ज्ञान हो गया! आहाहा! ज्ञाननय के.. ‘एषिणः’ शब्द है न! ज्ञाननय के शोधनेवाले, ज्ञान प्रगट हुआ नहीं। ज्ञानानन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु, वह दृष्टि में-ज्ञान



में और परिणति में आया नहीं। मात्र ज्ञान के क्षयोपशम में... आहाहा! उसके इच्छुक। अर्थात् (पक्षपाती).. ज्ञान उघड़ा, उसका मात्र पक्षपाती कि हमें इससे मोक्ष होगा। भले हम विषय-कषाय चाहे जितने सेवन करें, परन्तु हमारे यह ज्ञान हुआ, इससे मुक्ति होगी। वे भी डूब गये हैं। आहाहा!

जैसे पुण्य-पाप के पक्षकार मिथ्यात्व में डूबे हैं, वैसे ज्ञानपरिणति, शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान है नहीं, अनुभव अन्तरवस्तु नहीं, अन्तर (स्वरूप) सन्मुख दृष्टि हुई नहीं, अन्तर्मुख करता नहीं। मात्र वर्तमान में ज्ञान के क्षयोपशम द्वारा हमें यह धर्म हुआ, ऐसा मानते हैं, वे भी मिथ्यात्व में डूब गये हैं। आहाहा! हम सम्यग्दृष्टि हैं, हमें अब विषय-कषाय भोगने में क्या बाधा है? ऐसा माननेवाले (मिथ्यात्व में डूब गये हैं)। आहाहा! विषय-कषायभाव, भाई! दुःखरूप है। भगवान का स्वभाव तो आनन्द है। उस आनन्द की धारा जिसे प्रगट नहीं हुई और मात्र ज्ञान के उघाड़ की बातें करके विषय-कषाय में एकाकार लीन हो गये हैं, वे डूब गये हैं। आहाहा!

दो बातें की हैं। शुभ-अशुभभाव को मोक्ष माननेवाले, वे डूब गये हैं और शुद्धता का भान नहीं और यहाँ ज्ञान के क्षयोपशम में शुद्धता का अनुभव नहीं तथा शुद्धता की ओर मन्द उद्यम है। पाठ है न? 'मन्दउद्यमाः' आहा! उस ओर का पुरुषार्थ मन्द है और विपरीत भाव में तीव्र पुरुषार्थ है। शुभाशुभभाव, विषय-कषाय के भाव में... आहाहा! तीव्र विपरीत भाव है। प्रमादी हैं.. प्रमाद का पोटला! अन्दर ज्ञान का भान नहीं होता और हम ज्ञातादृष्टा हैं, ऐसा ज्ञान के क्षयोपशम की अकेली दशा से अन्तर्मुख के झुकाव की दशा बिना इस उघाड़ से ही मुझे धर्म की प्राप्ति होगी, वह भी कहते हैं कि ज्ञान के इच्छुक को स्वभाव का भान नहीं है और विषय-कषाय में तल्लीन हो गये हैं। वे भी डूबेंगे। आहाहा! ऐसा है।

ज्ञाननय के.. 'एषिणः' ऐसा कहा न? वह तो मात्र इच्छुक है। वस्तु उघड़ी नहीं है तथा अन्तर्मुख प्रयत्न नहीं है। शुद्ध चैतन्यमूर्ति की ओर का झुकाव भी नहीं है। आहाहा! भावार्थ में है, इसमें-अर्थ में भी है। जो स्वरूप का कुछ पुरुषार्थ नहीं करते—जो स्वरूप का कुछ पुरुषार्थ नहीं करते। नीचे है, उसमें भी है - 'मन्दउद्यमाः' है न? ऐसा शब्द है न? आहाहा! 'अति स्वच्छन्दमन्दउद्यमाः' ऐसा है न? कैसे हैं? डूबे हुए क्यों हैं? कि वे स्वच्छन्दता से अत्यन्त मन्द उद्यमी हैं.. स्वरूप की ओर का प्रयत्न ही नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** स्वरूप का प्रयत्न ही नहीं है ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, वह नहीं है । स्वरूप जो शुद्ध चैतन्य है, उस ओर का झुकाव ही नहीं, उस ओर का झुकाव ही नहीं और स्वच्छन्द सेवन कर ज्ञान के उघाड़ के नाम से विषय-कषाय सेवन करें तो भी हमें बन्ध नहीं है ( -ऐसा माननेवाले) डूब गये हैं । आहाहा ! वस्तु तो यह जितने अंश में जैसे है, वैसे है । आहाहा ! ज्ञान के उघाड़ के नाम से हम पण्डित हैं, हमें जानकारी है ( और ) हमें निर्जरा अधिकार में कहा है कि अरतिभाव से सेवन करते हैं, उन्हें बन्ध नहीं है । आता है न ? उसका हमें प्रेम नहीं है और हम सेवन करते हैं परन्तु प्रेम नहीं है और सेवन करते हैं, ( ऐसा तू कहे तो ) स्वरूप का उघाड़ होना चाहिए, तो प्रेम नहीं है । स्वरूप की दृष्टि की स्थिरता आदि श्रद्धा-ज्ञान में होवे तो उसमें ( विषयादि में ) प्रेम नहीं है, ऐसा कहा जाए परन्तु उसका प्रेम नहीं तो इसमें प्रेम है और विषय-कषाय में डूब गया है । आहाहा ! ऐसा है । दोनों पहलुओं से ( बात की है ) । आहाहा !

ज्ञान के उघाड़ के नाम से अपनी महत्ता सेवन करे । आहाहा ! दुनिया से पैसा माँगे, अनुकूलता ले और ऐसा कहे कि हमें तो ज्ञान है, परन्तु ज्ञान होवे तो निर्मलता होवे तो इस प्रकार का तीव्र लोभ ही नहीं होता । ज्ञान के उघाड़ के नाम से पर से माँगना, यह हो ही नहीं सकता । आहाहा ! कठिन बात है, भाई ! वीतराग की एक-एक बात ऐसी है । आहाहा !

देखो ! इसका अर्थ किया, देखो ! वे स्वच्छन्दता से अत्यन्त मन्द उद्यमी हैं.. अति मन्द उद्यमी हैं, ऐसा कहा है । ( -स्वरूप प्राप्ति का पुरुषार्थ नहीं करते,.. ) अन्तर में झुकाव नहीं करते । अभी भले प्राप्त न हुए हों परन्तु अन्तर में झुकाव होता है, उसे भी यहाँ खड़ा रखा है, परन्तु जिसे अन्तर का झुकाव ही नहीं और अकेला मन्द उद्यम है, स्वभाव सन्मुख है नहीं और पुण्य-पाप की तीव्रता में पड़े हैं । आहाहा ! है ? स्वच्छन्दता से अत्यन्त मन्द उद्यमी हैं.. 'अति स्वच्छन्दमन्दउद्यमाः' यह शब्द पड़ा है । सम्यग्दृष्टि न हो परन्तु सम्यग्दर्शन सन्मुख, मिथ्यादृष्टि हो, उसे यहाँ आगे इसमें नहीं रखा । समझ में आया ? सम्यग्दर्शन के सन्मुख है; है अभी मिथ्यात्व परन्तु सन्मुख है, उसे इस पर की ओर के विषय-कषाय में लीनता नहीं होती, उसमें अन्दर रस नहीं होता । आहाहा ! इसलिए यह शब्द प्रयोग किया है— 'अति स्वच्छन्दमन्दउद्यमाः'

अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उस ओर का झुकाव और सन्मुखता जरा भी

नहीं और मात्र विषय-कषाय के परिणाम की ओर झुकाव में ही पड़ा है... आहाहा! गजब श्लोक है। जैसे वे पुण्य-पाप के करनेवाले भी धर्म मानकर डूबे हुए हैं, वैसे ही जिसे अन्तर्मुख का प्रयत्न ही नहीं, अन्तर्मुख (होने का) जो प्रयत्न चाहिए, वह प्रयत्न ही नहीं और अकेला बहिर्मुख का प्रयत्न है और ज्ञान का उघाड़ है, उससे हमें धर्म होगा, (ऐसा माननेवाले) भी डूबे हुए हैं। आहाहा! वे भी मिथ्यात्व में हैं, ऐसा कहना है। डूबे हुए अर्थात् कहाँ डूबे हैं? मिथ्यात्व में डूबे हुए हैं, वे संसार में डूबे हुए हैं। आहाहा!

वास्तविक अन्दर वस्तु प्रभु, शुद्ध आनन्दघन की ओर का झुकाव ही नहीं, झुकाव जरा भी नहीं और अकेले ज्ञान के उघाड़ के नाम से विषय-कषाय को सेवन करके स्वच्छन्दी (होकर) पैसा आदि अनेक प्रकार हैं न अभी? ज्ञान के नाम से पैसा उगाहे, हमें ज्ञान हुआ, इसलिए पैसा दो, ऐसा करो, वैसा करो। आहाहा! वह पर में एकदम लालसावाले (मिथ्यादृष्टि हैं।) अन्दर में तो अति मन्द उदय है अर्थात् उस ओर का झुकाव जरा भी नहीं। आहाहा!

स्वभाव भगवान् पूर्णानन्द प्रभु, जो यही चीज़ है, वह आत्मा है। ऐसे पूर्णानन्द का ध्येय नहीं, ध्रुव का जिसे ध्येय नहीं और ज्ञान के उघाड़ में ध्येय (और) लक्ष्य तो मात्र पर की ओर है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** पर की ओर लक्ष्य है अर्थात् ?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** अन्तर की ओर नहीं, पर की ओर (ही है)। आत्मा के अतिरिक्त जितने परपदार्थ हैं, उतनी ओर का झुकाव है। आत्मा की ओर का मन्द उद्यम भी नहीं है और स्वच्छन्द में महा उद्यमवाले होकर (घूमते हैं)। आहाहा! ऐसी बात है।

(स्वरूप प्राप्ति का पुरुषार्थ नहीं करते,..) देखो! यह मन्द उदय की व्याख्या ऐसी की है। स्वरूप प्राप्ति का अन्तर झुकाव, पुरुषार्थ नहीं करते। प्रमादी (होकर) पड़े हैं। प्रमाद के पोटले हैं। आहाहा! (और विषयकषाय में वर्तते हैं)। वापस देखा? अति स्वच्छन्द है न! मन्द उद्यम अर्थात् स्व सन्मुख पुरुषार्थ नहीं करते, प्रमादी हैं और अकेले विषय-कषाय में वर्तते हैं, ऐसा। आहाहा! वे भी डूबे हुए हैं। वह भी मिथ्यात्व में ही पड़े हैं, ऐसा कहना है। आहाहा!

‘ते विश्वस्य उपरि तरन्ति’ अब तीसरा, तीसरा... तीसरा (बोल) है। दो बोल

कहे, अब तीसरा। सम्यग्दृष्टि का (बोल कहते हैं)। वे जीव विश्व के ऊपर तैरते हैं.. कि.. 'ये स्वयं सततं ज्ञानं भवन्तः कर्म न कुर्वन्ति' आहाहा! जो कि स्वयं निरन्तर.. आनन्दरूप होते हुए ज्ञानरूप होते हुए-परिणमते हुए.. ज्ञान अर्थात् वस्तु जो ज्ञानस्वरूप है, उस प्रकार से परिणति में ज्ञानरूप होते हुए, ऐसा। आहाहा! जानने के क्षयोपशम का ज्ञान नहीं। वह तो जैसा स्वरूप चैतन्य है, उस प्रकार से उसका ज्ञान होने पर, उसका परिणमन होने पर, ऐसा। आहाहा!

जो कि स्वयं निरन्तर ज्ञानरूप होते हुए.. आहाहा! विश्व के ऊपर तैरते हुए अर्थात् राग से लेकर समस्त चीजों से भिन्न रहते हुए। ऊपर तैरते, ऐसा आता है न? १४४ (गाथा में)। ऊपर तैरते - (शब्द) आता है न! वहाँ आता है। विश्व ऊपर तरंता। राग से लेकर सब चीज से भिन्न रहकर। आहाहा! वे विश्व पर तरंता अर्थात् भिन्न रहते हुए। आहाहा! ज्ञानी को राग होता है, तथापि उससे वे भिन्न रहते हैं। आहाहा! स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसके ध्रुव के ध्यान में ध्येय तो ध्रुव है। उसमें अन्दर मग्न हैं, वे विश्व के ऊपर तैरते हैं। राग से लेकर सब चीज से भिन्न रहे हैं, ऐसा। तैरते हैं अर्थात् उससे भिन्न रहते हैं। आहाहा!

वे जीव विश्व के ऊपर तैरते हैं.. 'ये स्वयं सततं ज्ञानं भवन्तः कर्म न कुर्वन्ति' ऐसा। जो स्वयं निर्मल ज्ञानस्वरूप परिणमते हुए। ज्ञान अर्थात् आत्मस्वरूप (उस रूप) परिणमते हुए। पूरे आत्मा के स्वरूप का परिणमन करते हुए। आहाहा! कर्म नहीं करते.. राग आवे, उसका कर्ता नहीं होता, अकर्तारूप से जानता है और 'जातु प्रमादस्य वशं न यान्ति' कभी भी प्रमादवश भी नहीं होते (-स्वरूप में उद्यमी रहते हैं)। आहाहा! धर्मी जीव तो सदा स्वरूप की ओर के झुकाव से चूकते नहीं। आहाहा! ध्रुव के ध्येय को भूलते नहीं। आहाहा! इसीलिए वे प्रमाद के वश नहीं होते। आहाहा! गजब, भाई! श्लोक! अमृतचन्द्राचार्य ने संक्षिप्त में बहुत डाला है! बहुत लिखा है!

'जातु प्रमादस्य वशं न यान्ति' कभी भी.. परन्तु.. कदाचित् कहते हैं न! 'जातु' शब्द का (अर्थ) आता है न? कदाचित्, कभी, ऐसा। यहाँ 'कभी भी' डाला है। प्रमादवश भी नहीं होते.. आहाहा! स्वरूप को भूलकर राग के वश नहीं होते। स्वरूप की जागृति तो धर्मी को सदा रहती है। फिर उसे भेदज्ञान नहीं करना पड़ता। आहाहा! भेदज्ञान हुआ

है, वह सदा रहा ही करता है। भेदरूप ही रहा करते हैं। स्वरूप-सन्मुख ही झुकाव जाने से राग से भिन्न की दशा सदा रहा ही करती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

**भावार्थ :** यहाँ सर्वथा एकान्त अभिप्राय का निषेध किया है.. सर्वथा एकान्त। पुण्य-पाप के भाव से मोक्ष होगा, यह सर्वथा एकान्त मिथ्यात्व है। ऐसा आत्मा के स्वरूप सन्मुख के झुकाव बिना मात्र जानपने से मोक्ष होगा, यह भी एकान्त अभिप्राय है। आहाहा! सर्वथा एकान्त अभिप्राय का निषेध किया है क्योंकि सर्वथा एकान्त अभिप्राय ही मिथ्यात्व है। आहाहा!

कितने ही लोग परमार्थभूत ज्ञानस्वरूप आत्मा को तो जानते नहीं.. भगवान तो ज्ञानस्वरूप ज्ञातादृष्टा है। त्रिकाली ज्ञातादृष्टा है, उसका तो ज्ञान नहीं, उसकी प्रतीति नहीं, उसका अनुभव नहीं और व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्ररूप क्रियाकाण्ड के आडम्बर को.. आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और दया, दान, व्रत के विकल्प। ऐसे क्रियाकाण्ड के आडम्बर को.. सब क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। आहाहा! उसमें घिर गया है। उससे भिन्न भगवान ज्ञातादृष्टा है, उसकी ओर तो झुकाव, सन्मुखता है नहीं और मात्र पुण्य की क्रिया में और पाप की क्रिया में। क्रियाकाण्ड के आडम्बर को मोक्ष का कारण जानकर उसमें तत्पर रहते हैं.. आहाहा! अज्ञानी। उसका पक्षपात करते हैं।

ऐसे कर्मनय के पक्षपाती लोग.. कर्मनय अर्थात् यह पुण्य-पाप के भाव, वह (कर्मनय)। जो कि ज्ञान को तो नहीं जानते.. भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव है, उसकी ओर तो ध्येय नहीं, झुकाव नहीं, विश्वास नहीं। उस ओर की रुचि की मन्दता है, ठिकाना नहीं। यहाँ बाहर में रुचि की उग्रता है। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति (में) इतना उत्साह... इतना उत्साह... ओहोहो! मन्दिर में प्रतिमा स्थापित की तो मानो हमने क्या किया! कूदे, कूदे - ऐसे नाचे स्थापना करनेवाला! ऐसा कि आहाहा! हमने तो भगवान को (विराजमान किया)! परन्तु वह तो अकेला राग है। उस काल में आत्मा रागरहित है, उस ओर का झुकाव तो जरा भी नहीं है। शुद्ध चैतन्यघन आत्मा की ओर तो सन्मुखता, झुकाव है नहीं और मात्र परसन्मुख के राग में हमने मन्दिर स्थापित किया, हमने लाखों (रुपये) खर्च किये, पाँच लाख खर्च किये, दस लाख खर्च किये।

**मुमुक्षु :** पुण्य को हेय नहीं मानता ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** वह पुण्य को उपादेय मानता है । आहाहा ! अर्थात् धर्म का कारण मानता है । आहाहा !

ऐसे कर्मनय के पक्षपाती लोग—जो कि ज्ञान को तो नहीं जानते.. वस्तु भगवान शुद्ध चैतन्यघन है, उसकी ओर का तो झुकाव ही नहीं, उसकी ओर का तो कोई झुकाव ही नहीं । थोड़ा भी पुरुषार्थ स्वभाव-सन्मुख हो, वह भी नहीं । सब पुरुषार्थ पुण्य और पाप में रोक दिया है, आहाहा ! समझ में आया ? व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्ररूप क्रियाकाण्ड.. वह सब क्रियाकाण्ड, राग है । आहाहा ! पंच कल्याणक करे, धमाधम ! उसमें लाख-दो लाख खर्च करे । इन्द्र हो । आहाहा ! मानो कि हमने क्या किया ! आहाहा ! भाई ! वह तो पर की ओर का झुकाववाला राग है । वह आत्मा के सन्मुखता की झुकाववाली दशा कहाँ है वहाँ ? आहाहा ! चाहे जितने पंच कल्याणक में करोड़ रुपये खर्च करे और पूरे गाँव को जीमावे । गाँव में प्रत्येक को (जीमावे क्योंकि) भगवान की प्रतिष्ठा की है ! उससे क्या हुआ, कहते हैं । अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान की ओर का तो झुकाव नहीं और अकेले उस ओर के (बाह्य) झुकाव से धर्म मानता है, वे (मिथ्यात्व में) डूब गये हैं । आहाहा ! यह बात... ! हाथी निकाले, घोड़ा निकाले, आहाहा !

**मुमुक्षु :** अपने हाथी तो लाते हैं ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यही कहते हैं । लाते हैं तो भी उसकी मर्यादा है । उस ओर के वस्तु के भाग पर मर्यादा है, वहाँ जोर नहीं है । जोर यहाँ चाहिए । हो भले, वह तो कहा न ! ज्ञानी को (ऐसा भाव) होता है, परन्तु उसमें वह एकाकार नहीं होता । आहाहा ! हाथी, घोड़ा...

**मुमुक्षु :** लोग ऐसा कहते हैं कि तुम करो वह ठीक और हम करते हैं, वह ठीक नहीं ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ऐसा किसने कहा ? जो कुछ आत्मा के स्वभाव की ओर झुकाव नहीं और करता है और अकेला पर की ओर झुकाव है, वह मिथ्यादृष्टि है । यहाँ तो यह (बात है) । चाहे वह बड़ी धमाल करे, पंच कल्याणक करे, गजरथ चलावे, उससे क्या हुआ ? वह तो पर की क्रिया है । उस ओर भाव कदाचित् हो तो राग मन्द है और वह तो क्रियाकाण्ड है । उससे धर्म मानता है, वह तो डूब गया है । आहाहा ! ऐसी बात है । उसमें

साधु को आहार-पानी दे और उसमें उत्साह करे... मानो अपना तो कल्याण हो जाएगा ! भाई ! वह तो परसन्मुख के झुकाव का भाव है, भाई !

**मुमुक्षु :** ऐसा तो शास्त्र में लिखा है कि मुनि को आहार दे तो संसार सीमित करे ।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** सीमित संसार किया, यह नहीं कहते । श्वेताम्बर में है, दिगम्बर में नहीं । श्वेताम्बर में कहते हैं ( कि ) इन साधु को आहार दे तो सीमित संसार ( किया ) बिल्कुल झूठ बात है । परद्रव्य की ओर के झुकाव का भाव, वह राग है; राग है, वह तो संसार का कारण है । उस समय अन्तर्दृष्टि स्वभाव-सन्मुख होवे तो वह राग पुण्य का कारण है और यहाँ जितनी शुद्धता है, वह निर्जरा का कारण है । उसमें दोनों एक साथ होते हैं परन्तु आत्मा की शुद्धता की ओर उन्मुखता भी नहीं, झुकाव नहीं, रुचि नहीं... आहाहा ! उसकी पूर्णता के प्रभुता की महिमा जिसे भासित नहीं होती और इस राग की क्रिया की जिसे महिमा भासित होती है, ( वह मिथ्यात्व में डूबा हुआ है ) । आहाहा ! यह तो वीतरागमार्ग स्पष्ट है, बापू ! इसमें कहीं ( पोल चले ऐसा नहीं है ) । आहाहा !

**ज्ञान को तो नहीं जानते और कर्मनय में ही खेदखिन्न हैं.. देखा ?** इस शुभभाव में खेदखिन्न है । दुःख, अकेला दुःख वेदन करते हैं । वे-संसार में डूबते हैं । संसार ( कहकर ) मिथ्यात्व में डूब गये हैं, ऐसा कहना है ।

**और कितने ही लोग आत्मस्वरूप को यथार्थ नहीं जानते..** जो भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानघन निर्मल स्वरूप को तो जानते नहीं तथा सर्वथा एकान्तवादी मिथ्यादृष्टियों के उपदेश से अथवा अपने आप ही अन्तरंग में ज्ञान का स्वरूप.. आहाहा ! मिथ्या प्रकार से कल्पित करके.. वास्तविक स्वरूप की ओर झुकाव नहीं और मात्र बाहर के जानपने में ( रुककर ) आहाहा ! उसमें पक्षपात करते हैं । वे अपनी परिणति में किञ्चित्मात्र भी परिवर्तन हुए बिना.. देखा ? बात यहाँ है । इसमें भी है । अपनी दशा में कुछ भी अन्तर पड़े बिना, अन्तर्मुख के कुछ जरा भी झुकाव बिना । आहाहा !

**वे अपनी परिणति में किञ्चित्मात्र भी परिवर्तन हुए बिना अपने को सर्वथा अबन्ध मानते हैं..** हमारे अबन्ध है । हमारे क्या है ? वह तो आता है न ? निर्जरा अधिकार में नहीं आता ? क्लेश करो तो करो.. आहाहा ! अमृतचन्द्राचार्य का एक कलश ( कलश नंबर १४२ ) है । आहाहा !



**मुमुक्षु :** तपश्चर्या करते हैं, उसके लिए है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तपस्या करे, वह तो राग है, वह सब तपस्या कहाँ है ? आत्मा की ओर का झुकाव नहीं, (वहाँ) तपस्या (कैसी ?) छह-छह महीने के अपवास अनन्त बार किये। भगवान की आरती अनन्त बार उतारी, भगवान की सेवा, भक्ति, पूजा अनन्त बार (की है), वह तो पर की ओर का झुकाव तो राग है। आहाहा! 'परदब्बादो दुग्गई' परद्रव्य के झुकाव की ओर तो चैतन्य की गति है ही नहीं। उसमें जानपने के नाम से उसमें रुक जाए और अन्तर का झुकाव नहीं करे, वे डूब गये हैं। आहाहा!

अपनी परिणति में किञ्चित्मात्र भी परिवर्तन हुए बिना.. है न? अति मन्द उद्यम है सही न! वे अपने को सर्वथा अबन्ध मानते हैं और व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्र के क्रियाकाण्ड को निरर्थक जानकर छोड़ देते हैं। नहीं होती शुद्धता और अशुभ में पड़कर शुभ को छोड़ देते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्रियाकाण्ड शुभभाव है, उसे छोड़ देते हैं और अशुभ में पड़े हैं, शुद्धता का लक्ष्य नहीं है।

**मुमुक्षु :** क्रियाकाण्ड निरर्थक हुआ न।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** निरर्थक ही है। क्रियाकाण्ड तो निरर्थक ही है परन्तु क्रियाकाण्ड निरर्थक है, वह ज्ञान के स्वरूप की खबर है, इस ओर सन्मुखता का झुकाव है, उसका क्रियाकाण्ड निरर्थक है। वह तो ज्ञानी को भी क्रियाकाण्ड निरर्थक है। वह तो इसमें आ गया न? मिथ्यादृष्टि का यतिपना, वह बन्ध का कारण है और सम्यग्दृष्टि का यतिपना मोक्ष का कारण है - ऐसा है नहीं। यतिपना है, वे दोनों क्रियाकाण्ड हैं। यति के भरोसे रहना नहीं। अन्दर भगवान का भरोसा कर! आहाहा! बाहर के अट्टाईस मूलगुण के भरोसे रहना नहीं। अट्टाईस मूलगुण पालते हैं, पंच महाव्रत पालते हैं, आजीवन ब्रह्मचर्य पालते हैं, उसके भरोसे रहना नहीं, क्योंकि वह तो परसन्मुख के झुकाव का भाव है। आहाहा!

व्यवहार दर्शनज्ञानचारित्र के क्रियाकाण्ड को निरर्थक जानकर छोड़ देते हैं। ऐसा जानकर (छोड़ देते हैं)। स्वरूप की ओर दृष्टि नहीं, झुकाव नहीं और पुण्य को छोड़कर पाप में पड़े हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसे ज्ञाननय के पक्षपाती लोग जो कि स्वरूप का कोई पुरुषार्थ नहीं करते.. ऐसा। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी

ओर जरा भी झुकते नहीं, सन्मुखता नहीं, उस ओर के प्रयत्न का तो बिल्कुल अभाव है और मात्र ज्ञान के उघाड़ से धर्म मानकर विषय-कषाय का सेवन करते हैं। आहाहा! ऐसे ज्ञाननय के पक्षपाती लोग जो कि स्वरूप का कोई पुरुषार्थ नहीं करते... देखा? और शुभ परिणामों को छोड़कर.. (छोड़) देते हैं, ऐसा लेते हैं। शुभ परिणाम को छोड़ देते हैं। वे विषय-कषाय में वर्तते हैं, वे भी संसारसमुद्र में डूबते हैं।

यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! जरा भी फेरफार होवे तो यहाँ ऐसा नहीं चलता, कहते हैं। ज्ञान का उघाड़ / क्षयोपशम है, वह परलक्ष्यी है। वह तो शब्दज्ञान है, वह कहीं आत्मज्ञान नहीं है। उस शब्दज्ञान में सन्तुष्ट होकर आत्मज्ञान की ओर झुकाव नहीं करते और बाकी कषाय के भाव तीव्र आया ही करें, तो भी दरकार नहीं करते। आहाहा! वे डूब गये हैं। आहाहा!

विषय-कषाय में वर्तते हैं,.. वापस ऐसा कहा न! स्वरूप का जरा भी उद्यम नहीं, शुभ परिणामों को छोड़कर स्वच्छन्दी होकर विषय-कषाय में वर्तते हैं, वे भी संसारसमुद्र में.. मिथ्यात्व डूबते हैं। संसार समुद्र अर्थात् मिथ्यात्व। आहाहा! मिथ्यात्व ही संसार है। यह एकान्तपना है, यही मिथ्यात्व है और यही संसार है। अन्तर के स्वरूप की ओर झुकाव नहीं और मात्र ज्ञान के उघाड़ के भाव में ही धर्म मान (बैठे हैं)। शब्दज्ञान होकर, वह शब्दज्ञान तो ग्यारह अंग का ज्ञान अनन्त बार किया, वह यदि धर्म का कारण होवे तो ग्यारह अंग का ज्ञान अनन्त बार हुआ। आहाहा! उस शब्दज्ञान में सन्तुष्ट हो जाते हैं, परन्तु आत्मज्ञान की ओर झुकाव नहीं करते। यहाँ तो ऐसा है रोकड़-रोकड़ा, जितने हों उतने। आहाहा!

**मुमुक्षु :** सर्राफा की पैड़ी होवे न!

**पूज्य गुरुदेवश्री :** आड़ा-टेढ़ा कुछ नहीं चलता। पहले ऐसा रिवाज था। रुपया खोटा हो तो चलने न दे। स्वयं जड़ दे, चौखट में जड़ दे। अपने चौखट में जड़ दे। वह इनकार करे तो कहे नहीं, चलने नहीं दूँगा। (यह तो) वीतराग की दुकान है, सर्राफी! उसमें कोई आड़ा-टेढ़ा चले, ऐसा नहीं है। आहाहा!

**मुमुक्षु :** उभयाभासी होवे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उभयाभासी भी वह है। आहाहा!

मोक्षमार्गी जीव ज्ञानरूप परिणमित होते हुए.. देखो! शुद्ध आत्मा की श्रद्धा, ज्ञानरूप से परिणमते हुए धर्मी, शुभाशुभ कर्मों को हेय जानते हैं.. तीसरे नम्बर के (जीव लिये)। मोक्षमार्गी जीव.. शुद्धस्वरूप से परिणमते हुए। आहाहा! शुभाशुभ कर्मों को हेय जानते हैं और शुद्ध परिणति को ही उपादेय जानते हैं। वे तो शुद्धस्वभाव की निर्मल परिणति हो, वही उपादेय है, (ऐसा मानते हैं)। सम्यक्त्वी शुभभाव को उपादेय नहीं मानता। आहाहा!

वे मात्र अशुभ कर्मों को ही नहीं, किन्तु शुभ कर्मों को भी छोड़कर,.. शुभ—पुण्य। आहाहा! धर्मी स्वरूप में स्थिर होने के लिए निरन्तर उद्यमी रहते हैं.. स्वरूप में स्थिर होने को निरन्तर उद्यमवन्त हैं। आहाहा! वे सम्पूर्ण स्वरूपस्थित होने तक पुरुषार्थ करते ही रहते हैं। उस ओर वह पुरुषार्थ होता ही है। आहाहा! भेदज्ञान से... आता नहीं? भेदज्ञान से चारित्र होता है, (ऐसी) गाथा आती है न! यह उस ओर झुकाव ही होता है। अन्तर.. अन्तर.. अन्तर.. अन्तर्मुख। इससे वे सम्पूर्ण स्वरूपस्थित होने तक पुरुषार्थ करते ही रहते हैं।

जबतक, पुरुषार्थ की अपूर्णता के कारण शुभाशुभ परिणामों से छूटकर स्वरूप में सम्पूर्णतया स्थिर नहीं हुआ जा सकता, तबतक—यद्यपि स्वरूपस्थिरता का आन्तरिक—आलम्बन (अन्तःसाधन) तो शुद्ध परिणति स्वयं ही है.. अन्तर ध्रुव ध्येय तो उसे ही है। आहाहा! ध्रुव का ही अवलम्बन है, ज्ञायक का ही अवलम्बन है। शुद्धभाव त्रिकाल अन्तरतत्त्व का ही अवलम्बन है। बहिर्तत्त्व रागादि का अवलम्बन भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यद्यपि स्वरूपस्थिरता का आन्तरिक—आलम्बन (अन्तःसाधन) तो शुद्ध परिणति स्वयं ही है तथापि—आन्तरिक—आलम्बन लेनेवाले को जो बाह्य आलम्बन होते हैं, ऐसे (शुद्ध स्वरूप के विचार आदि) शुभ परिणामों में वे जीव हेयबुद्धि से प्रवर्तते हैं,.. समकित्ती को शुभभाव आता है, (परन्तु) हेय बुद्धि से प्रवर्तते हैं। आहाहा! किन्तु शुभ कर्मों को निरर्थक मानकर उन्हें छोड़कर स्वच्छन्दतया अशुभ कर्मों में..

---

नहीं प्रवर्तते। बात यह है। (ऐसे) प्रवृत्त होने की बुद्धि कभी नहीं होती। शुभ को छोड़कर अशुभ में प्रवर्तन करूँ, ऐसी बुद्धि कभी नहीं होती।

ऐसे एकान्त अभिप्राय रहित जीव कर्मों का नाश करके, संसार से निवृत्त होते हैं। लो! यह तीसरे बोल की बात की। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

---